वैज्ञानिक नस्लवाद

एक उलझी हुई गुत्थी

मोहन राव

ऐसा आम तौर पर माना जाने लगा है कि 11 सितम्बर, 2001 के दिन दुनिया कुछ बुनियादी ढंग से हिल उठी थी। तब से नस्ल जैसे जुम्ले फिर एक बार चलन में आ गए हैं। एक ओर तो अंततः विज्ञान ने हमारे सामने साबित कर दिया है कि नस्ल जैसी किसी चीज़ का कोई अस्तित्व नहीं है, वहीं दूसरी ओर दुनिया भर में नस्लवादी प्रवृत्तियां बढ़ रही हैं, सख्त हो रही हैं। मसलन, जर्मनी ने तय किया है कि जिस व्यक्ति के दादा निर्विवाद रूप से जर्मन हों, वह व्यक्ति ही जर्मन माना जाएगा। नतीजा यह है कि माफिया पूंजीवाद से भागकर अन्यत्र पनाह लेने को इच्छुक रूसी लोगों को तो जर्मन नागरिकता दी जा रही है और जर्मन पढ़ाई जा रही है, वहीं तुर्की मूल के वे लोग जो जर्मनी में ही पैदा हुए हैं, उन्हें जर्मन राष्ट्रीयता और नागरिकता से इन्कार किया जा रहा है।

यह सही है कि एक के बाद एक पश्चिमी देशों ने उत्तर-आधुनिक ढंग से बहु-संस्कृति के सह अस्तित्व को पहचाना मगर साथ ही वे आप्रवास के विरुद्ध नाकाबंदी कर रहे हैं। अपने ही देश में फ्रॉली और राजाराम जैसे फर्जी लोग हुए हैं जिन्होंने हड़प्पा में नस्लवादी सिद्धांत घुसाने की कोशिश की। ऐसा करते हुए वे आंकड़ों में हेराफेरी करने से भी नहीं चूके। हमारे यहां सम्प्रदायों की अवधारणा में भी नस्ल का विचार घर कर गया है। इसके अलावा जनसंख्या कार्यक्रमों तथा दलितों व पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण सम्बंधी नीतियों पर भी यूजीनिक्स (श्रेष्ठ नस्ल निर्माण का विज्ञान) के विचारों का असर दिखाई पड़ता है।

यहां हम इन सवालों का जवाब खोजने का प्रयास करेंगे - नस्ल क्या है? क्या इसका सम्बंध उपनिवेशवाद से है? क्या यह साम्प्रदायिकता से जुड़ी है? फिर यूजीनिक्स क्या है? इसका पश्चिमी देशों में आव्रजन नीतियों पर क्या असर है? और दुनिया भर में कल्याण योजनाओं पर इसका क्या असर है? दलितों के जीवन व जीविका पर हिंसक आक्रमणों को यह कैसे प्रभावित करती है?

गौरतलब है कि उन्नीसवीं सदी के अंतिम वर्षों में जब नस्ल की धारणा जड़ पकड़ रही थी, तब भी इसका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं था। उस समय इस धारणा की जांच के लिए उपयुक्त तकनीकें व औज़ार उपलब्ध न थे। ये तकनीकें हमें बीसवीं सदी में डी.एन.ए. की दोहरी कुण्डली की खोज के बाद ही हासिल हुई हैं। इसके बाद ही हम अनुवांशिकता के बारे में ठोस रूप में कुछ कह पाने में सक्षम हुए हैं। बहरहाल, इससे इतना तो साफ हो ही जाता है कि बगैर किसी वैज्ञानिक आधार के भी यह संभव है कि आप विरासत के विमर्श में नस्लवादी धारणाएं सफलतापूर्वक घुसेड़ दें। मसलन बोस्निया में मुस्लिमों को एक नस्ल का रूप देने की ताज़ा कोशिश का हवाला दिया जा सकता है।

उपनिवेशवाद आधुनिक राष्ट्र राज्य के निर्माण का प्रतिफल था जो अट्ठारवीं सदी में प्रारंभ हुआ था। यह नस्ल सम्बंधी धारणाओं के उभार से एक सदी पहले शुरू हुआ था। यानी उपनिवेशवाद की प्रेरणा तो नस्ल सम्बंधी विचारों से नहीं मिली थी मगर इन्होंने उपनिवेशों को सुदृढ़ बनाने में मदद ज़रूर की। खास तौर से 'यूजीनिक्स' इसमें काफी उपयोगी साबित हुआ।

नस्लवादी विमर्श में ढले सामाजिक विज्ञान थे - मानवशास्त्र (एन्थ्रोपोलॉजी) और मस्तिष्क विज्ञान (फ्रिनोलॉजी)। इनका इस्तेमाल उपनिवेशवाद को जायज़ ठहराने के लिए किया गया। अलबत्ता यह नस्लवादी नज़रिया मनोविज्ञान जैसे क्षेत्रों में भी झलका और आज भी सामाजिक जीव विज्ञान के मूल में यही नस्लवादी नज़रिया है।

उपनिवेशवाद आधुनिक राष्ट्र राज्य के निर्माण का प्रतिफल था जो अट्ठारवीं सदी में प्रारंभ हुआ था। यह नस्ल सम्बंधी धारणाओं के उभार से एक सदी पहले शुरू हुआ था। यानी उपनिवेशवाद की प्रेरणा तो नस्ल सम्बंधी विचारों से नहीं

मिली थी मगर इन्होंने उपनिवेशों को सुदृढ़ बनाने में मदद ज़रूर की। खास तौर से 'यूजीनिक्स' इसमें काफी उपयोगी साबित हुआ। मसलन, ऑस्ट्रेलिया में मूल निवासियों के खात्मे को ईसाई सभ्यतावादी मिशनों का एक कर्तव्य माना गया था। यह भी माना गया था कि यह प्राकृतिक चयन व सर्वोत्तम की उत्तरजीविता के 'विज्ञान' का स्वाभाविक नतीजा है। भारत में विक्टोरियाई उपयोगितावाद, यूजीनिक्स और 1857 के घटनाक्रम से उपजे डर का मिला-जुला परिणाम था कि नस्ल की धारणा सख्त होती गई। कई लोगों का तो मत है कि नस्ल की धारणा की खोज ही इन वजहों से हुई। जैसे, यहां लड़ाकू व गैर-लड़ाकू (मार्शियल व गैर मार्शियल) नस्लों के समूह बनाए गए, मुस्लिमों को एक अलग नस्ल बताया गया वगैरह। इसी के साथ हिन्दू राष्ट्रीयता का नवजात विचार और प्राचीन आर्य विरासत की खोज तथा मैक्स मूलर जैसे इण्डोलॉजिस्ट की रचनाओं की बदौलत एक हिन्दू नस्ल का विचार पनपा और एक स्वर्ण युग की अवधारणा सामने आई। इसकी प्रतिध्वनि आज भी देश को हिला रही हैं।

1871 में चार्ल्स डार्विन की पुस्तक 'द डिसेन्ट ऑफ मैन' प्रकाशित हुई थी। इस पुस्तक ने यूजीनिक्स आंदोलन के जन्म में काफी महत्वपूर्ण योगदान दिया। जीवन के लिए संघर्ष, प्राकृतिक चयन और सर्वोत्तम की विजय जैसे विचारों को जब मानव समाजों पर लागू किया गया तो नतीजे भयावह थे, इसके नैतिक परिणामों की तो बात ही जाने दें।

यूजीनिक्स आंदोलन का प्रमुख लक्ष्य था नस्लीय शुद्धता और नस्ल सुधार। यूजीनिक्स आंदोलन की नींव फ्रांसिस गाल्टन ने रखी थी - फ्रांसिस गाल्टन चार्ल्स डार्विन का चचेरा भाई था और आबादियों पर सांख्यिकीय विधियां लागू करने में उसे महारत हासिल थी। आपको याद होगा कि चार्ल्स डार्विन के साथ-साथ विकास का सिद्धांत ए.आर. वालेस ने भी खोजा था। अपने एक निबंध में वालेस की दलील थी कि - 'आज के दिन यह मुमकिन नहीं लगता कि किसी भी रूप में प्राकृतिक चयन प्रभावी होकर नैतिकता और बुद्धिमत्ता में कोई स्थाई सुधार कर पाएगा क्योंकि नैतिक व बौद्धिक दोनों लिहाज़ से निम्न या मध्यम दर्जे के लोग ही जीवन में सफल होते हैं और सबसे अधिक प्रजनन करते हैं।'

इस वक्तव्य में हम देखते हैं कि एक वैज्ञानिक एक ऐसी बात का दावा कर रहा है जिसका कोई प्रमाण नहीं है, शायद हो भी नहीं सकता। ज़ाहिर है, वह यह दावा आस्था के आधार पर कर रहा है। बहरहाल, वालेस के इन विचारों ने जेन ह्यूम क्लेपर्टन को 1885 में यूजीनिक्स सम्बंधी पुस्तक साइंटिफिक मेलियोरिज़्म (वैज्ञानिक सुधारवाद) लिखने को प्रेरित किया। वे लिखती हैं कि नस्ल के खून को 'नैतिक बीमारी से विषाक्त नहीं होने दिया जाएगा। सामाजिक जीवन के वर्तमान संरक्षक भावी पीढ़ी की खुशहाली के प्रति तनिक भी लापरवाह नहीं हो सकते; इसके लिए अपराधियों को अपनी दुष्ट संतानें पैदा करने से बलपूर्वक रोका जाता है। यह किस्म खत्म हो जाएगी जबकि सुसंतुलित व्यक्ति, सभ्य, उत्कृष्ट, बुद्धिमान लोग भावी पीढ़ियों के जन्मदाता होंगे। और नसों में बहते शुद्ध खून व अमिश्रित अच्छाई की बदौलत ब्रिटिश नस्ल अपनी वर्तमान नैतिकता से ऊपर उठेगी। जन्मजात अपराधियों, जो जेलों में आजीवन बंदी रहेंगे, के सुख के लिए उन्हें (यौन) संयम की बजाय दूसरा विकल्प दिया जा सकता है - कि उनमें से पुरुषों की ऐसी शल्य क्रिया कर दी जाए जिससे वे प्रजनन के योग्य न रहें।'

यहां लड़ाकू व गैर-लड़ाकू (मार्शियल व गैर मार्शियल) नस्लों के समूह बनाए गए, मुस्लिमों को एक अलग नस्ल बताया गया वगैरह। इसी के साथ हिन्दू राष्ट्रीयता का नवजात विचार और प्राचीन आर्य विरासत की खोज तथा मैक्स मूलर जैसे इण्डोलॉजिस्ट की रचनाओं की बदौलत एक हिन्दू नस्ल का विचार पनपा और एक स्वर्ण युग की अवधारणा सामने आई। इसकी प्रतिध्वनि आज भी देश को हिला रही हैं।

फ्रांसिस गाल्टन ने एक यूजीनिक्स शिक्षा समिति की स्थापना की और यूजीनिक्स रिव्यू नामक एक पत्रिका का प्रकाशन करने लगे। उन्होंने ही युनिवर्सिटी कॉलेज, लंदन में जैवमिति प्रयोगशाला भी स्थापित करवाई और वहां से एक पत्रिका बायोमेट्रिका का प्रकाशन भी किया। गाल्टन

को जैव-सांख्यिकी (जीवों सम्बंधी आंकड़े) इकट्ठे करने का शौक था। इसके अलावा वे जीवों के वंशवृक्ष सम्बंधी जानकारी भी जमा करते थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि सबसे अक्लमंद और श्रेष्ठ लोगों को ही संतानोत्पत्ति करना चाहिए। लिहाज़ा यूजीनिक्स के एजेंडा पर दो बातें थीं - गाल्टन का सकारात्मक यूजीनिक्स और क्लेपर्टन का नकारात्मक यूजीनिक्स। समय-समय पर नकारात्मक यूजीनिक्स की मेहरबानी जिन लोगों पर हुई उनमें अपराधी, मानसिक रूप से पिछड़े व्यक्ति, पागल, टीबी के मरीज़, कुष्ठ रोगी, शराबी, मिर्गी के रोगी, मंदबुद्धि, आप्रवासी लोग रहे; गरीबों पर तो नकारात्मक यूजीनिक्स की खास मेहरबानी रही ही है।

आई.क्यू. परीक्षण की रचना कुछ हद तक इस मकसद से भी हुई थी कि इसके आधार पर उन लोगों को छांटा जा सकेगा जिन्हें यूजीनिक नसबंदी की ज़रूरत है।

आई.क्यू. परीक्षण की रचना कुछ हद तक इस मकसद से भी हुई थी कि इसके आधार पर उन लोगों को छांटा जा सकेगा जिन्हें यूजीनिक नसबंदी की ज़रूरत है।

यूजीनिक्स ने अटलांटिक के दोनों तरफ प्रभावशाली लोगों का मन मोह लिया था। जर्मनी के एक प्रमुख यूजीनिक्सविद हिटलर ने लिखा था -"यदि जीवन और प्रजनन के समान अवसर हों, तो निकृष्ट लोग कहीं तेज़ी से बच्चे पैदा करते हैं और वे संख्या में सदैव श्रेष्ठ लोगों से ज़्यादा होते हैं। अतः श्रेष्ठ लोग अनिवार्य रूप से पृष्ठभूमि में दब जाते हैं। इसलिए श्रेष्ठ लोगों के पक्ष में कुछ सुधार ज़रूरी हैं। प्रकृति में यह सुधार इस रूप में उपस्थित है कि निकृष्ट लोगों को जीवन की ऐसी कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है कि उनकी संख्या कम हो जाती है। शेष के बारे में भी यह कि प्रकृति उन्हें अंधाधुंध ढंग से संतानोत्पत्ति नहीं करने देती, बल्कि उनकी सेहत व शक्ति के अनुसार सतत चयन करती है।"

प्रकृति के जानलेवा तरीकों में सुधार का जो तरीका उसने सुझाया उसे अंतिम समाधान कहा गया। एडोल्फ हिटलर ने अपनी यूजीनिक्स योजना में अन्य लोगों के अलावा यहूदियों, साम्यवादियों, समलैंगिकों और जिप्सियों को शामिल किया।

यह कोई अचरज की बात नहीं है कि सारे बुनियादपरस्त अभियानों में राष्ट्रीय व नस्लीय शुद्धता का आव्हान होता है और इसके लिए राष्ट्र को 'गैर' से मुक्ति दिलाने की बातें होती हैं। यह भी कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि ऐसे दावे करने वाले लोग प्रायः जनसंहार का सहारा लेते हैं और खास तौर से औरतों और बच्चों को निशाना बनाते हैं।

यू.एस. में बीसवीं सदी की शुरुआत में यूजीनिक्स आंदोलन ने ज़ोर पकड़ा। इसका प्रमुख कारण यह था कि गाल्टन वहां के प्रकृति वैज्ञानिकों को यह समझाने में सफल हो गया था कि 'जीनियस' एक वंशानुगत गुण है। वर्ष 1900 में मेंडेल की रचनाओं की फिर से खोज के बाद 1903 में अमेरिकन ब्रीडर्स एसोसिएशन का एक यूजीनिक्स विभाग खोला गया। इसका मकसद 'श्रेष्ठ खून का महत्व और निकृष्ट खून से समाज को खतरे' को रेखांकित करना था। अमरीकी यूजीनिक्स आंदोलन ने 'अबाधित आप्रवास' के स्थान पर आप्रवास को सीमित करने के कानून बनवाने की दिशा में काम किया। खास तौर से यह कहा गया कि गैर-एंग्लो-सैक्सन या गैर-नॉर्डिक आप्रवासी देश के रक्त को दूषित कर देंगे। यूजीनिक्स आंदोलन ने मानसिक रूप से मंद, मिर्गी ग्रस्त व मनोरोगियों के बंध्याकरण के कानून पारित करवाने में भी भूमिका निभाई। यूजीनिकविद लिओन व्हिटने ने लिखा भी था - "हम (4 लाख लोगों के बंध्याकरण की जर्मन) योजना की प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकते। हम मानते हैं कि इस कार्यवाही के बाद जर्मनी एक सशक्त राष्ट्र बनकर उभरेगा।" व्हिटने ने यह भी कहा था कि "गोरे लोगों की अपेक्षा नीग्रो में 6 गुना ज़्यादा मंदबुद्धि होते हैं।" लिओन व्हिटने को प्रतिध्वनित करते हुए एम.एस. गोलवलकर ने लिखा था - "नस्ल की शुद्धता और अपनी संस्कृति को बचाने के लिए, जर्मनी ने अपने देश को सामी नस्लों से मुक्ति दिलाकर दुनिया को हैरत में डाल दिया। जर्मनी ने यह भी दिखा दिया है कि मूल रूप से भिन्न नस्लों व संस्कृतियों के लिए एकाकार हो पाना असम्भव ही है। यह हिंदुस्तान में हमारे लिए एक लाभदायक सबक हो सकता है।"

नस्ल की शुद्धता व राष्ट्रवाद

लिहाज़ा यह कोई अचरज की बात नहीं है कि सारे बुनियादपरस्त अभियानों में राष्ट्रीय व नस्लीय शुद्धता का आव्हान होता है और इसके लिए राष्ट्र को 'गैर' से मुक्ति दिलाने की बातें होती हैं। यह भी कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि ऐसे दावे करने वाले लोग प्रायः जनसंहार का सहारा लेते हैं और खास तौर से औरतों और बच्चों को निशाना बनाते हैं।

थोड़ा कम नृशंस रूप में देखें तो इस 'वैज्ञानिक' उन्माद के शिकार कमज़ोर, अशक्त व असहाय लोग होते हैं। यह जानते हुए कि यूजीनिक्स के पीछे कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है, आज भी इसका सम्मोहन बरकरार है और यह कई आधुनिक कानूनों में झलकता है। मसलन यू. एस. के कई प्रांतों में हार्मोन युक्त इम्प्लांट वाले गर्भनिरोधक इस्तेमाल किए गए हैं। कानूनन यह ज़रूरी कर दिया गया है कि कल्याण योजनाओं का लाभ उठा रही ऐसी औरतें जिनका या तो आपराधिक रिकॉर्ड है या जिन पर बच्चों की उपेक्षा करने का आरोप है, उन्हें नॉरप्लांट गर्भनिरोधक लगवाना ही होगा। अन्यथा उन्हें कल्याण योजना का लाभ नहीं मिलेगा। नतीजतन, नॉरप्लांट की शिकार अधिकांश औरतें या तो अश्वेत हैं या हिस्पैनिक।

इसी प्रकार से इंग्लैण्ड में बोर्ड ऑफ एजूकेशन की संयुक्त समिति की रिपोर्ट में पाया गया कि 'मानसिक रूप से कमज़ोर पालक पतन व बीमारियों के ऐसे केंद्रों का निर्माण कर देते हैं जहां कल्याणकारी योजनाएं कभी नहीं पहुंच सकतीं। इस रिपोर्ट से प्रेरित होकर यूजीनिक्स सोसायटी ने 1930 में यूजीनिक बंध्याकरण विधेयक के लिए घनघोर प्रचार अभियान शुरू कर दिया था। इस अभियान से एच.जी.वेल्स, डार्विन के पुत्र मेजर डार्विन और जूलियन हक्सले जैसी हस्तियां जुड़ी थीं। हक्सले ने लिखा था, "यदि हम अपनी नस्ल के क्रमिक अधःपतन से बचना चाहते हैं, तो मेरे विचार से दोषपूर्ण व्यक्तियों को बंध्याकरण के ज़रिए अलग-थलग रखना बहुत महत्वपूर्ण और अनिवार्य है।"

विख्यात जीव वैज्ञानिक जे.बी.एस. हाल्डेन ने वैज्ञानिक लिहाज़ से यूजीनिक्स की साख को समाप्त कर दिया था। मगर 1940 के दशक में हर्मन मूलर द्वारा उत्परिवर्तन यानी म्यूटेशन की खोज ने तो यूजीनिक्स की बची-खुची वैज्ञानिक साख को भी ध्वस्त कर दिया। इसके बाद यूजीनिक्स के हिमायतियों ने पैंतरा बदला और तथाकथित क्रिप्टो-यूजीनिक्स अर्थात् जनसंख्या नियंत्रण का सहारा लिया। 1956 में ब्रिटिश यूजीनिक्स सोसायटी ने निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किया- 'कि सोसायटी यूजीनिक लक्ष्यों को पाने का काम थोड़े कम स्पष्ट रास्तों से करे, इसके लिए क्रिप्टो यूजीनिक्स की नीति अपनाई जाए। क्रिप्टो यूजीनिक्स में सोसायटी सघन गतिविधियां करे और फैमिली प्लानिंग एसोसिएशन और इंटरनेशनल प्लान्ड पेरेन्टहुड एसोसिएशन को वित्तीय सहायता में वृद्धि कर दे।'

विख्यात जीव वैज्ञानिक जे.बी.एस. हाल्डेन ने वैज्ञानिक लिहाज़ से यूजीनिक्स की साख को समाप्त कर दिया था। मगर 1940 के दशक में हर्मन मूलर द्वारा उत्परिवर्तन यानी म्यूटेशन की खोज ने तो यूजीनिक्स की बची-खुची वैज्ञानिक साख को भी ध्वस्त कर दिया। इसके बाद यूजीनिक्स के हिमायतियों ने पैंतरा बदला और तथाकथित क्रिप्टो-यूजीनिक्स अर्थात् जनसंख्या नियंत्रण का सहारा लिया।

वैज्ञानिक, सम्मानजनक नस्लवाद धुंधला ज़रूर पड़ा मगर मरा नहीं। नस्लवाद धुंधला भी पड़ा तो इसलिए नहीं कि वह वैज्ञानिक रूप से निराधार था। वैज्ञानिक रूप से दिवालिया तो वह था मगर वह धुंधला पड़ा। हिटलर के जनसंहार से जुड़ी धारणाओं से चिपके रहना शर्मिंदगी का कारण बन गया था। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद आशा और उम्मीदों के माहौल में ऐसे निराधार विचारों के लिए कोई जगह न थी।

पूंजीवाद के स्वर्णयुग की समाप्ति और संकट के उभरने के साथ ही एक बार फिर 1970 के दशक में नस्ल और आई.क्यू. ने सिर उठाया। इस बार बेल कर्व (एक किस्म के वितरण ग्राफ) की बहसों में ये विचार झलकने लगे। तब से बढ़ते क्रम में व्यक्तिगत प्रवृत्तियों को जिनेटिक बताने का सिलसिला चल पड़ा है। दूसरी ओर जिनेटिक रूप से

परिवर्तित दुनिया का सपना भी ज़ोर पकड़ रहा है। इस उभार का सम्बंध इस बात से भी है कि मार्गरेट थेचर ने गरीबों को ही गरीबी की वजह निरूपित करके कल्याणकारी राज्य की अवधारणा पर धावा बोल दिया था। हिलेरी रोज़ कहते हैं कि नव उदारवाद 'शारीरिक गुण ही नियति है' (बॉयोलॉजी इज़ डेस्टनी) की दलील के लिए अनुकूल माहौल उपलब्ध कराता है। इस धारणा को आज छद्म-विज्ञान के लबादे में पेश किया जा रहा है।

यह कहना तो एक वैज्ञानिक धोखाधड़ी होगी कि संस्कृति का निर्धारण जिनेटिक आधार पर होता है। यह कहना कि जीन्स पर्यावरण से ऊपर हैं, या स्त्री और पुरुषों के बीच कोई मूलभूत जीव वैज्ञानिक फर्क है या कालों व गोरों के बीच जिनेटिक फर्क है या धार्मिक समूहों के बीच जिनेटिक फर्क हैं, ये सब विज्ञान के नहीं पूर्वाग्रह के वक्तव्य हैं।

तब यह कोई अचरज की बात नहीं कि भारत में गिरीराज किशोर यह दावा करते हैं कि एक गाय की ज़िन्दगी पांच दलितों के बराबर है। अचरज इसलिए नहीं होना चाहिए कि छद्म विज्ञान के भेष में खालिस अप्रजातांत्रिक, गरीब-विरोधी, स्त्री-विरोधी बातें निर्लज्जता से कहना सम्भव हो गया है।

ये नस्लवादी दलीलें किस बुनियाद पर टिकी हैं? मसलन हम जानते हैं कि विभिन्न समूहों के जिनेटिक संघटन में अंतर कम, समानताएं ज़्यादा हैं। दरअसल एक ही समूह के अंदर मौजूद भिन्नताएं कहीं ज़्यादा उल्लेखनीय हैं। हम यह भी जानते हैं कि जैविक अनुवांशिकता और सांस्कृतिक विरासत के बीच ज़मीन आसमान का फर्क है। मगर जब लैमार्क के अनुवांशिकता सिद्धांत को जिनेटिक विकास के साथ पेश किया जाता है तो यह एक वैज्ञानिक चालाकी है। यह बात भी वैज्ञानिक लिहाज़ से उतनी ही अप्रामाणिक है कि एक जीन जैव-विकास की इकाई है या एक व्यक्ति अनुकूलन की इकाई है। यह कहना तो एक वैज्ञानिक धोखाधड़ी होगी कि संस्कृति का निर्धारण जिनेटिक आधार पर होता है। यह कहना कि जीन्स पर्यावरण से ऊपर हैं, या स्त्री और पुरुषों के बीच कोई मूलभूत जीव वैज्ञानिक फर्क है या कालों व गोरों के बीच जिनेटिक फर्क है या धार्मिक समूहों के बीच जिनेटिक फर्क हैं, ये सब विज्ञान के नहीं पूर्वाग्रह के वक्तव्य हैं।

1950 में नवगठित यूनेस्को ने प्रकृति वैज्ञानिकों, समाज वैज्ञानिकों और दार्शनिकों का एक वक्तव्य प्रकाशित किया था। इसमें नस्ल की धारणा को सिरे से खारिज करते हुए मानव जाति के एक होने पर बल दिया गया था। मगर आज जैविक निर्यातवाद कई विषयों पर हावी है और नीतियों को प्रभावित कर रहा है। मस्तिष्क के अजीबोगरीब क्रियाकलाप सामाजिक को जैविक बताने पर तुले हैं। ***(स्रोत विशेष फीचर्स)***

अगले अंक में

स्रोत जून 2003
अंक 173

- कौन ज़्यादा ठण्डा - उत्तर ध्रुव या दक्षिण ध्रुव?
- वैज्ञानिक नज़रिया
- प्रश्न चिन्ह पर कुछ प्रश्न
- इंसान का शरीर जंतुओं का अड्डा है
- बस्ते का बोझ कम नहीं होगा, क्योंकि.....